आम चुनाव 2014

भारतीय पूंजीवादी जनतंत्र के चरित्र और उसकी भावी विकास की दिशा को उद्घाटित करते हुए सोलहवीं लोकसभा के चुनाव सम्पन्न हो गये हैं। परिणाम वही आया जो इस देश का एकाधिकारी पूंजीपति वर्ग चाहता था।

भारत का एकाधिकारी पूंजीपति वर्ग एक ऐसी सरकार चाहता था जो उसके हितों के अनुरूप तेजी से आर्थिक व श्रम सुधार करे। वह ऐसी सरकार चाहता था जो सुधारों की राह से सब अवरोधों को निर्ममतापूर्वक हटा दे। वह ऐसी सरकार चाहता था जो गठबंधन के दबाव और तनाव से मुक्त हो। वह ऐसी सरकार चाहता था जो लोक कल्याण के उस लबादे को उतार फेंके जिसे उसके सहोदर भाइयों ने पहले ही दुनिया में अन्य जगह उतार फेंका है और जिसे उतार फेंकने में संप्रग सरकार हिचकिचा रही थी।

भारत के एकाधिकारी पूंजीपति वर्ग की हसरत पूरी हो गयी। मनवांछित परिणाम, मनवांछित सरकार और सरकार का मनवांछित मुखिया मिल गया।

ऐसा नहीं है कि वर्ष 2014 में बहुत अनोखा हुआ या वर्ष 2009 के चुनाव का नियंता एकाधिकारी पूंजीपति वर्ग नहीं था। 2009 के आम चुनाव में कांग्रेस नीत गठबंधन 2004 से अधिक मजबूत बनाकर उभारा गया था। परमाणु समझौते को पास करवाने में मनमोहन सरकार ने जो चतुराई और साहस दिखलाया था, उसने एकाधिकारी घरानों को मनमोहन का मुरीद बना दिया था।

मनमोहन की बदकिस्मती वर्ष 2010 के बाद शुरू हुई। विश्व आर्थिक संकट ने उभरती हुई अर्थव्यवस्थाओं को अपने प्रभाव में ले लिया। कृषि क्षेत्र जो भारत में आज भी भगवान भरोसे है को छोड़ दिया जाय तो बाकि अर्थव्यवस्था दिनोंदिन बदतर होती गयी।

वर्ष 2012 ऊहापोह में बीत गया। 2013-14 में मनमोहन सरकार ने कई कदम उठाये जो देशी-विदेशी एकाधिकारी पूंजीपति वर्ग की मांग के अनुरूप थे। परन्तु तब तक देर हो चुकी थी। एकाधिकारी पूंजीपति वर्ग कांग्रेस को बैरक में भेजने का मन बना चुका था। सभी तरह का गणित बिठाकर एकाधिकारी पूंजीपति वर्ग ने मोदी नीत भाजपा नीत राजग को 2014 के आम चुनाव में पहली पसंद घोषित कर दिया।

अब इसके बाद शुरू हुआ भारतीय पूंजीवादी जनतंत्र का एक नया चरण।

एकाधिकारी पूंजीवादी घरानों ने अभूतपूर्व ढंग से आम चुनाव से मनवांछित परिणाम हासिल करने के लिए उसे पूर्णतः प्रायोजित और नियोजित कर डाला। मतदाताओं को प्रभावित करने के लिए उसने हर संसाधन व हर माध्यम का इस्तेमाल किया।

मोदी को स्वीकार्य बनाने के लिए उसकी नयी छवि गढ़ी गई। गुजरात दंगों के पाप से उसे विमुक्त कर दिया गया। भारत की अदालतों से उसे पाक साफ घोषित कराया गया। गुजरात मॉडल और नरेन्द्र मोदी के बारे में मिथक गढ़े गये और प्रचार माध्यमों के जरिये उसे युग सत्य घोषित कर दिया गया। क्योंकि मोदी एकाधिकारी पूंजी की जरूरत था इसलिए उसके निम्न इतिहास व भौगोलिक ज्ञान को नजरअंदाज कर दिया गया।

एकाधिकारी पूंजी और राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ का नापाक गठजोड़ कायम किया गया। इस गठजोड़ में जोड़ का काम स्वयं नरेन्द्र मोदी ने किया। इस नापाक गठजोड़ ने मोदी की विजय को सुनिश्चित करने के लिए अति आधुनिक तकनीक से लेकर भारतीय समाज के घृणित यथार्थ का बखूबी इस्तेमाल किया। टेलीविजन, इण्टरनेट, फेसबुक, टिव्टर, मोदी की 3-D छवि के जरिये देशव्यापी चुनावी सभाएं, साम्प्रदायिक प्रचार जिसमें यू-ट्यूब से लेकर मुखामुखी तक, जाति गोलबंदी, हिंदू धार्मिक प्रतीकों का इस्तेमाल आदि सभी कुछ शामिल था। नरेन्द्र मोदी भी अपनी निजी महत्वाकांक्षा के लिए रात दिन एक किये हुए था।

मोदी के महिमा मण्डन और उसे वक्त की आवश्यकता घोषित करने के लिए आवश्यक था कि कांग्रेस, मनमोहन-सोनिया-राहुल, यूपीए गठबंधन की खूब लानत-मलानत की जाय। इसमें जितना योगदान मोदी ने दिया उससे कम पूंजीवादी मीडिया और राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ ने भी नहीं दिया।

मनमोहन, सोनिया, राहुल, कांग्रेस व यू.पी.ए. के नेतृत्व व कार्यशैली की खूब फजीहत की गई और घोषित कर दिया गया देश के शीर्ष स्तर पर राजनैतिक निर्वात है। नेतृत्व अक्षम और नकारा है। मनमोहन के पास कोई राजनैतिक प्राधिकार नहीं है। यह एक लोकप्रिय कथा बनाई गयी। मोदी ने बिल्कुल कथा वाचकों की शैली में इस कथा का वाचन किया। मोदी ने मुरारी बापू, आसाराम बापू और रामदेव से ज्यादा बेहतरीन हुनर का परिचय दिया।

शहरी-ग्रामीण निम्न पूंजीपति वर्ग, जो कि झूठी चेतना से लैस होता है, का एक बड़ा हिस्सा एकाधिकारी पूंजी के द्वारा प्रायोजित व नियोजित प्रचार, मोदी के अति मानवीकरण और राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ की जमीनी मेहनत के जाल में फंस गया और चुनाव में विभिन्न पार्टियों को मिले मतों से स्पष्ट है कि इस बार भाजपा को उन जातियों और तबकों से भी मत मिला जो कि उसका परम्परागत वोट बैंक नहीं हैं। यहां तक कि उसने करीब आठ प्रतिशत मुस्लिम मत भी हासिल कर लिये।

संप्रग के दस वर्षीय शासन काल के प्रति क्षुब्धता और आक्रोश हर बीते दिन के साथ बढ़ता जा रहा था और चुनाव परिणामों ने दिखला दिया कि उपरोक्त के साथ इसकी मोदी की जीत में अहम भूमिका थी। आडवाणी एक लिहाज से ठीक ही कह रहे थे कि किसी सरकार ने हारने के लिए इतनी मेहनत नहीं की।

निरंतर बढ़ती मंहगाई, प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्ष ढंग से गिरती मजदूरी, घटती क्रय शक्ति, बेरोजगारी, बिजली-पानी-सड़क जैसी आम सुविधाओं का अभाव, सामाजिक असमानता, इलाकाई पिछड़ापन आदि चीजें भारत की आम जनता के जीवन को बेहद प्रभावित कर

रही थी और उद्वेलित कर रही थी। कांग्रेस नीत गठबंधन के वायदे पर एतबार नहीं था और मोदी के गुजरात के विकास का मिथक सर चढ़कर बोल रहा था।

पूंजीवादी मीडिया, पूंजीपति वर्ग के जरखरीद बुद्धिजीवी व चुनाव आयोग हालात को बदलने के लिए चुनावों को रामबाण औषधि के रूप में पेश कर रहा था। भारी पैमाने पर हुए मतदान ने दिखलाया कि वे अपनी रणनीति में सफल रहे। बढ़े हुए मतदान प्रतिशत में उपरोक्त के प्रचार के साथ राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ की भूमिका भी महत्वपूर्ण थी। उसने सवर्ण सहित हिन्दू मध्यवर्गीय मतदाताओं के मतदान को सुनिश्चित करने में सक्रिय भूमिका निभायी।

बढ़ा हुआ मतदान प्रतिशत इस बात का भी घोतक है कि भारत के शासकवर्ग के आधार और प्रभाव का विस्तार हुआ है। अपने शासन को वैधता दिलवाने वाली चुनावी प्रक्रिया में आम मतदाताओं के भरोसे का कायम रहना शासक वर्ग के लिए अपने शासन को दीर्घजीवी बनाने के लिए बहुत कारगर है। अपने शासन से क्षुब्ध व असन्तुष्ट तत्वों को अपनी व्यवस्था में समेट कर रखने वाले 'नोटा' बटन दबाने वालों की संख्या पूरे देश में साठ लाख से भी अधिक थी।

भारत में इस बार चुनाव कार्यक्रम बेहद लम्बा था। चुनाव 'शान्तिपूर्ण ढंग' से सम्पन्न कराने के लिए भारी पैमाने पर सुरक्षा बलों को नियुक्त करना पूंजीवादी जनतंत्र की हकीकत को खोलने के लिए काफी है। परन्तु इस सबके बावजूद फर्जी मतदान, मतदाताओं को लुभाने के लिए पैसे, वस्तुओं और शराब का वितरण व्यापक पैमाने पर हुआ। करोड़ों रूपयों का जब्त होना बतलाता है कि किस व्यापक पैमाने पर मत खरीदने के लिए पूंजीवादी पार्टियों ने पैसा पानी की तरह बहाया। इस सबके बावजूद एक तिहाई मतदाताओं ने अपने मत का प्रयोग नहीं किया। कई बुर्जुआ नेताओं की निगाह में मत न डालना अपराध है और वे अनिवार्य मतदान की पैरवी करते देखे गये। भारतीय बुर्जुआ के किसी हिस्से ने इसका विरोध नहीं किया। बढ़ते फासीवादी रूझान की ही यह एक अन्य अभिव्यक्ति है।

असल में, जैसे-जैसे पूंजीवादी व्यवस्था का पतन बढ़ता जा रहा है वैसे-वैसे उसका चरित्र और प्रतिक्रियावादी होता जा रहा है। पिछले कुछ दशकों में भारत सहित पश्चिमी पूंजीवादी लोकतंत्र में राज्य की आम जीवन पर निगरानी बढ़ती गयी है और नागरिकों के जीवन को नियंत्रित करने की प्रवृत्ति बढ़ी है। आतंकवाद आदि के नाम पर काले कानूनों का निर्माण, सार्वजनिक जीवन व इण्टरनेट-फेसबुक-मोबाइल फोन आदि के जरिये लगातार बढ़ती निगरानी ने आम नागरिकों के व्यक्तिगत जीवन की निजता को समाप्त सा कर दिया है। एक तरह से पूंजीवादी राज्यों ने फासीवादी राज्यों के चरित्र व तौर-तरीकों को आत्मसात कर लिया है। और यह सब करते हुए वह नाजीवाद और फासीवाद की रस्मी आलोचना भी करता है। पश्चिमी पूंजीवादी देशों में ही नहीं जापान और आस्ट्रेलिया में ऐसे तत्वों का वर्चस्व बढ़ा है। राज्य अंधराष्ट्रवादी, फासीवादी, नाजीवादी तत्वों को प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्ष प्रश्रय दे रहा है।

भारत के संदर्भ में यह बात हिंदू फासीवादियों को एकाधिकारी पूंजी और भारतीय राज्य द्वारा लगातार मिल रही मान्यता और संरक्षण की वजह से बहुत ही घातक हो जाती है। आज पूर्व के किसी भी समय से अधिक हिंदू फासीवादियों का भारतीय राज्य के हर अंग, उपांग में दखल और पहुंच बहुत बढ़ चुकी है। भारतीय राज्य और हिन्दू फासिस्ट संगठनों का बढ़ता एकीकरण इस चुनाव में मिली विजय के बाद काफी अधिक बढ़ जायेगा। भारतीय सेना भी अब इससे बहुत तेजी से संक्रमित होगी। भविष्य में भारतीय राज्य और राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ का देशव्यापी नेटवर्क भारतीय समाज के शोषित-उत्पीड़ितों के साथ वाम और प्रगतिशील ताकतों के लिए नागपाश साबित होगा।

इसमें कोई शक नहीं है कि भारतीय समाज में हिंदू फासिस्ट तत्वों के द्वारा अर्द्ध फासीवादी राज्य का गठन कोई बहुत दूर की बात नहीं रह गयी है। अधिनायकवादी प्रवृत्ति और छवि के साथ नरेन्द्र मोदी को एकाधिकारी पूंजी के वरदहस्त और अन्य बुर्जुआ तबकों की कमजोरी और पस्त हिम्मती ने इसे अति समीप ला दिया है। पिछले तीन दशकों से भारत की सामाजिक-जनवादी पार्टियों की निकृष्ट भूमिका का भी इसमें महत्वपूर्ण योगदान रहा है।

इस बार के चुनाव में सामाजिक-जनवादी पार्टियों की दुर्गति देखने लायक रही है। संसद में न केवल इनका संख्या बल कम हुआ है बल्कि मत प्रतिशत भी गिर गया है। माकपा-भाकपा का जनाधार सिमटता जा रहा है। सड़क से संसद तक कोहराम मचाने का दावा करने वाले जनता से बुरी तरह से कट चुके हैं। इनके नेताओं का जनता से सजीव संबंध तो इनके पतित होते ही भंग होने लगा था परन्तु अब इनकी नयी पीढ़ी के नेताओं का न तो अपनी पृष्ठ भूमि और न ही कर्मभूमि के रूप में कोई सरोकार मजदूरों और अन्य मेहनतकश हिस्सों से रह गया है। भाकपा (माले-लिबरेशन) का भविष्य माकपा का वर्तमान है।

चुनाव में भागीदारी करने वाले क्रांतिकारी कम्युनिस्टों का प्रभाव नाममात्र का भी नहीं था। वे मजदूरों-मेहनतकशों तक पहुंचने और उन पर प्रभाव डालने की स्थिति में ही नहीं हैं। वे अपनी ही राजनीतिक दुनिया में सिमटे हुए हैं। यही हालात चुनाव बायकाट करने वाले कम्युनिस्ट क्रांतिकारियों की भी थी। कुछ जगह सफल बॉयकाट तो कुछ जगह महज सनसनी फैलाने में वे अपनी सफलता देख सकते हैं।

भारतीय समाज का वस्तुगत यथार्थ तो यही है कि भारतीय सर्वहारा वर्ग और उसके प्रतिनिधि भारतीय राजनीति में कोई हस्तक्षेप करने अथवा प्रभाव छोड़ने की स्थिति में नहीं हैं।भारतीय सर्वहारा वर्ग विभिन्न बुर्जुआ पार्टियों का ही पिच्छलग्गू बना हुआ है। औद्योगिक केन्द्रों में मिली भाजपा की जीत बता रही है कि वह किस स्थिति में खड़ा है। इसके बावजूद तस्वीर का एक दूसरा पहलू भी है।

बेहतरीन चुनाव प्रबंधन और मत हासिल करने के लिए हर तरह के छल नियोजन के बावजूद भाजपा को मात्र इकत्तीस फीसदी मत हासिल हुए और उसके गठबन्धन को करीब उनतालीस फीसदी मत मिले। मतों का यह प्रतिशत यह बतलाता है कि बड़ी चुनावी

सफलता के बावजूद देश की साठ फीसदी से अधिक आबादी ने भाजपा या उसके गठबंधन के साथ जाना पसंद नहीं किया और इनमें उन लोगों को भी शामिल कर लें जो मत डालने ही नहीं गये तो यह आंकड़ा और भी ज्यादा हो जाता है।

भाजपा की जीत को कईयों ने इस रूप में प्रचारित किया कि यह जाति गोलबंदी के युग की समाप्ति को दिखला रहा है। हकीकत यह है कि भाजपा ने घोर जातिवादी राजनीति की और अधिक सूक्ष्मता और धूर्तता से जातियों का समीकरण बैठाया। जिसे विश्लेषकों ने 'रिवर्स इन्जीनियरिंग' का नाम दिया।

भाजपा ने हिन्दू मतों को अपने पक्ष में करने के लिए पूरे देश में साम्प्रदायिक ध्रुवीकरण की मुहिम बहुत महीनों पहले ही शुरू कर दी थी। मुजफ्फरनगर, मेरठ जैसे कई उत्तर प्रदेश के जिलों में पूर्व नियोजित दंगों को अंजाम दिया गया। साम्प्रदायिक उभार के लिए उन्होंने वह सब कुछ किया जो वे कर सकते थे। इसी के तहत उन्होंने किसी मुस्लिम को उत्तर प्रदेश में चुनावी टिकट तक नहीं दिया। उसके 282 निर्वाचित सांसदों में एक भी मुस्लिम नहीं है।

लोकसभा में इस बार सबसे कम मुस्लिम सांसद हैं। उन्हें भारत की संसद में अपने मतों के अनुरूप प्रतिनिधित्व नहीं मिला।

यही बात भारतीय समाज के एक अन्य उत्पीड़ित तबके महिलाओं के बारे में भी सच है। हालांकि इस बार पिछली बार से कुछ ज्यादा महिला सांसद है।

भारतीय चुनाव प्रणाली का एक विद्रूप परिणाम बहुजन समाज पार्टी को मिले मत और उसे एक भी सीट न मिलने के रूप में सामने आया। हालांकि उसके मतों में पिछले चुनाव से वृद्धि हुई (यद्यपि मत प्रतिशत में एक तिहाई कमी आयी है) वह प्राप्त मतों के अनुसार भाजपा और कांग्रेस के बाद तीसरी बड़ी पार्टी है परन्तु लोकसभा में उसका एक भी सांसद नहीं है। यही बात एक अन्य रूप में कांग्रेस पार्टी पर भी लागू हुई। उसका जितना मत प्रतिशत गिरा उससे कहीं ज्यादा उसे सीटों का नुकसान हुआ। 19.3 प्रतिशत वोट पाने के बावजूद उसे केवल चवालीस सीटें मिलीं।

ऐसा ही स्थिति तमिलनाडु में द्रमुक (23.6%),पश्चिम बंगाल में वाम मोर्चे (30%) की रही। द्रमुक को जहां एक भी सीट नहीं मिली वहां वाम मोर्चे को दो ही सीटें मिलीं। केजरीवाल की पार्टी को दिल्ली में तैंतीस फीसदी वोट मिले परन्तु सीट एक भी नहीं मिली।

यही कारण है कि इस तरह के चुनावी नतीजों के बाद कई बुद्धिजीवियों ने आनुपातिक चुनाव (प्रोपोरशनल रिप्रजेंटेशेन) प्रणाली को लागू करने की मांग की। वे समझते हैं कि इस प्रणाली को अपनाने से भारत में चुनाव में धनबल और बाहु बल में कमी आ जायेगी। यह सच नहीं है। असल में दोनों ही प्रणालियां पूंजीवादी लोकतंत्र की विभिन्न किस्म की सीमा और विद्रूपता की शिकार हैं। विभिन्न किस्म के भ्रम खड़े करने वाली इन प्रणालियों में आम मतदाताओं की भूमिका औपचारिक और अप्रभावी है।

पूंजीवादी राजनीतिक व्यवस्था में तानाशाही का सबसे बेहतर रूप संसदीय व्यवस्था है। इसमें कोई भी 'परिवर्तन' या 'सुधार' इसे और नंगी तानाशाही की ओर ही ले जायेगा। इतिहासबोध से रहित बुर्जुआ और पेटी बुर्जुआ बुद्धिजीवी जब भी इस व्यवस्था में सुधार या परिवर्तन का एजेण्डा प्रस्तुत करते हैं, अपने सार रूप में वह राज्य की भूमिका को बढ़ाने वाला होता है। इस रूप में वे जाने-अनजाने फासीवाद के खुले-छिपे समर्थक बन जाते हैं।

भारत के इस बार के आम चुनाव के साथ लोकसभा में करोड़पतियों- अरबपतियों की संख्या में भारी बढ़ोत्तरी हुई। बयासी प्रतिशत सांसद करोड़पति हैं। जबकि पन्द्रहवीं लोकसभा में करोड़पति सांसद महज तीस फीसदी थे। ये तथ्य बतलाते हैं कि किस तरह से भारत की संसद में बड़ी पूंजी की भौतिक उपस्थिति बढ़ती जा रही है। असल में यह तथ्य पूरी तरह से ठीक नहीं है जो कि ज्यादातर सांसदों के द्वारा चुनाव आयोग को दिये गये हलफनामों पर आधारित है। यदि और गहराई से पड़ताल की जायेगी तो यह आंकड़ा 95 फीसदी से ऊपर चला जायेगा। और अरबपतियों की संख्या कम से कम एक तिहाई तक पहुंच जायेगी।

दागी पृष्ठभूमि के सांसदों की संख्या में भी इस बार इजाफा हुआ है। चौंतीस फीसदी चुने हुए सांसद दागी हैं। यह सब चुनाव आयोग, देश के उच्चतम न्यायालय आदि की कोशिशों और हस्तक्षेप के बाद है। जो पूंजीवादी व्यवस्था को दीर्घजीवी बनाना चाहते हैं।

पूंजीवादी चुनावी राजनीति में पूंजी और अपराध का गहरा और परस्पर निर्भरता का सम्बंध है। हद तो यह है नरेन्द्र मोदी के मंत्री मण्डल के तीस फीसदी मंत्रियों के खिलाफ आपराधिक मुकद्मे दर्ज हैं और उनके मंत्री मण्डल के इक्वायन प्रतिशत मंत्री करोड़पति हैं। पूंजी और अपराध का संबंध किसी भी तरह से भंग नहीं किया जा सकता है। पूंजी का जन्म ही रक्त से हुआ है।

कुल मिलाकर इस बार के आम चुनाव में एकाधिकारी पूंजी और हिन्दू फासिस्ट तत्वों का गठजोड़ बना और नतीजा उनके पक्ष में रहा है। अब यह गठजोड़ भारत में अपने हितों के अनुरूप हर वह कदम उठायेगा जिसके मंसूबे वे वर्षों से पाल रहे थे। इनके मार्ग में दो सबसे बड़े अवरोध हैं पहला भारतीय समाज के करोड़ों-करोड़ मजदूर-मेहनतकश और दूसरा विश्व आर्थिक संकट ।

जो भी कदम यह गठजोड़ उठायेगा उससे यह वह हासिल नहीं कर पायेगा जो वह करना चाहता है। और जैसे ही ऐसा नहीं होगा यह गठजोड़ बिल्कुल बनैले पशु की तरह व्यवहार करेगा। ऐसी स्थिति में माकूल जवाब देने के लिए सर्वहारा वर्ग और कम्युनिस्ट क्रांतिकारियों को अभी से, इसी पल से उचित और वास्तविक तैयारी शुरू करनी पड़ेगी। इतिहास उस युग के आने की आहट दे रहा है जो पिछली सदी में एक झलक दिखलाकर आंखों से ओझल हो गया था। पूंजीपति वर्ग का कोई भविष्य नहीं है। भविष्य सिर्फ और सिर्फ हमारा है।

■■■